भारतीय कृषि का व्यापारीकरण

सुरेंद्र सूद

आज कृषि का व्यापारीकरण एक आवश्यकता है, न कि केवल एक वांछित प्रयोजन। वे दिन गए जब छोटे और मझोले किसानों सहित अधिकतम किसानों के पास बिक्री योग्य अधिशेष नहीं होता था और अतः वे बाजार के रूझानों से अप्रभावित रहते थे। अब उन्हें अच्छी शर्तों पर अपना उत्पादन बेचने के लिए कुशल बाजार की आवश्यकता है। वे मांग के अनुसार और भावी मूल्य के रूझान को देखकर उत्पादन करते हैं। किंतु दुर्भाग्यवश सच यह है कि कोमोडिटीज मार्किट्स – स्पॉट और इसके साथ ही फॉरवार्ड मार्किट्स भी इस तरह से नहीं बनी कि वे उत्पादकों को उचित और लाभकारी मूल्य सुनिश्चित कर सकें। कुल मिलाकर जब स्पॉट मार्किट्स अक्षम और अपारदर्शी हैं, इसके अतिरिक्त आधारभूत सुविधाएं भी चाहिए, तो ऐसे में जिंसों की फॉरवार्ड मार्किट्स अधिकतम किसानों की पहुंच से बाहर है यद्यपि एक लंबे समय के प्रतिबंध के बाद फ्यूचर ट्रेडिंग को पुनः आरंभ किया गया है ताकि किसानों को लाभ मिल सके। सरकारी नीतियां उपभोक्ताओं के हित में ही बनाई जाती हैं और वे भी उन उत्पादकों की लागत पर।

इस धारणा के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि किसानों का प्रत्यक्ष संपर्क बाजार से वर्ष 1950 से बढ़ा है। कुल उत्पादन के अनुपात से संबंधित आंकडे, जिनकी वास्तव में बिक्री हुई है इस संबंध में एक उचित इंडिकेशन देता है। यह न केवल व्यापारिक फसलों के लिए है जिनकी बिक्री की जाती है, बल्कि खाद्य फसलों के लिए भी है। इसके अतिरिक्त किसानों की बाजार पर निर्भरता और इसके साथ उनका संबंध कृषि संसाधनों में भी देखा जा सकता है जो वे बाजार से खरीदते हैं यह उनके द्वारा बेची गई और खरीदी गई वस्तुओं के वर्तमान और अतीत के रूझान से पुष्ट होता है। नेशनल एकेडमी ऑफ एग्रिकल्चरल साइंसिस (एन.ए.ए.एस.) ने अपने प्रकाशन 'स्टेट ऑफ इंडियन एग्रिकल्चर 2009' में इस संबंध में प्रकाश डाला है।

वर्ष 1950 में जब कुल चावल उत्पादन का 30 प्रतिशत ही बाजार में बेचा जाता था यह अनुपात वर्ष 2007–08 में बढ़कर 71.4 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार से गेहूँ के मामले में इसी अवधि के दौरान इसका अनुपात 30 प्रतिशत से बढ़कर 63.3 प्रतिशत हो गया। मोटे अनाज जैसे; मक्का, सौरगम और बाजरा के मामलों का रूझान भी इससे भिन्न नहीं है। वर्ष 1950 में जब इन अनाजों के कुल उत्पादन का 24 और 27 प्रतिशत ही मंडियों में बेचा जाता था, वर्ष 2007–08 में इसका अनुपात बढ़कर 53 और 76 प्रतिशत हो गया। खाद्य फसलों को एक समूह मानते हुए यह देखा गया कि अब लगभग कुल उत्पादन का 68 प्रतिशत बाजार के लिए होता है जबकि वर्ष 1950 में यह केवल 27.4 प्रतिशत था।

दालों और तिलहनों के उत्पादक भी अब प्रमुख रूप से बाजार में बिक्री के लिए ही इन्हें उगाते हैं और अपने पास कुल उत्पादन का 10 प्रतिशत ही रखते हैं वह भी प्रमुख रूप से बीज के रूप में। यद्यपि इस प्रकार के आंकड़े पशुधन/उत्पादन, दूध, अंड़े और चिकन इत्यादि के उपलब्ध नहीं हैं, किंतु यह विश्वास करना पड़ेगा कि इन वस्तुओं का बिक्री योग्य भाग अनाज से काफी अधिक है।

संसाधनों की खरीद के संबंध में एन.ए.एस. प्रकाशन में प्रतीत होता है कि खरीदे गए संसाधनों का संयुक्त भाग कुल मूल्य का वर्ष 1970–71 में 9 से 10 प्रतीशत बढ़ते हुए अब 17 प्रतिशत हो गया। इसमें किराए पर लिए गए श्रमिक, बैलगाड़ी या कृषि मशीनरी जैसे ट्रैक्टर और हारवेस्टर (ये वस्तुएं खरीदने की जगह किसान इन्हें किराए पर लेना उचित मानते हैं) और किराए पर ली गई भूमि। निःसंदेह उर्वरक कृषि में नकद और प्रमुख संसाधनों का एक घटक है। वर्ष 1950–51 में किसानों ने 154 करोड़ रू. की उर्वरक खरीदी थी जो वर्ष 2006–07 में बढ़कर 25173 करोड़ हो गई। यहां तक कि किसानों द्वारा उपयोग की गई बिजली का खर्च भी इस अवधि के दौरान 5 करोड़ से बढ़कर 2710 करोड़ रू. हो गया।

उपरोक्त के अतिरिक्त भारतीय कृषि या व्यापारीकरण अब राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर चुका है इसके लिए अर्थव्यवस्था के बढ़ते हुए वैश्वीकरण का आभार प्रकट करना होगा। यह कृषि निर्यात में उल्लेखनीय वृद्धि और संसाधनों के आयात में वृद्धि और उल्लेखनीय उर्वरकों के आयात में वृद्धि से स्पष्ट होता है। कृषि निर्यात पिछले कई वर्षों से 14.8 प्रतिशत की अच्छी दर से प्रत्येक वर्ष बढ़ रहा है। वर्ष 1991 से आर्थिक सुधारों के आरंभ होने से कुल निर्यात और निर्यात की गई वस्तुओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। कुल निर्यात की वस्तुओं में सब्जियों, फलों, फूलों, कपास, पशुधन वस्तुएं और गन्ने की वस्तुओं में

समग्र रूप से निर्यात बढ़ रहा है। अन्य महत्वपूर्ण निर्यात की कृषि वस्तुओं में चावल (बासमती और गैर–बासमती), तैलीय पदार्थ, मसाले और समुद्री उत्पाद शामिल हैं। वर्ष 1990–91 में कृषि निर्यात का कुल मूल्य 6012.76 करोड रू. था जो वर्ष 2009–10 में बढ़कर 90000 करोड़ रू. से अधिक हो गया।

इसी प्रकार से उर्वरकों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश) का कुल उपभोग वर्ष 1990–91 में 12.55 मिलियन टन से बढ़कर वर्ष 2008–09 में 24.9 मिलियन टन हो गया। वर्ष 1990–91 में उर्वरकों का आयात 2.75 मिलियन टन और कुल मूल्य 1335.8 करोड़ रू. था जो वर्ष 2008–09 में बढ़कर 10.2 मिलियन टन और कुल मूल्य लगभग 11091 करोड़ रू. हो गया। यह एक अन्य क्षेत्र है जो दर्शाता है कि भारतीय किसान घरेलू और विदेशी बाजारों पर अधिक निर्भर हो रहे हैं।

किंतु दुर्भाग्य की बात यह है कि बाजार में कृषि वस्तुओं के व्यापार की मात्रा में कई गुना वृद्धि हुई है किंतु इस वृद्धि के अनुसार विपणन आधारभूत सुविधाएं विकसित नहीं हो पाई हैं। इसके अतिरिक्त पारदर्शिता, कुशलता और प्रतिस्पर्धा के अनुसार विपणन की गुणवत्ता में वांछित स्तर तक सुधार नहीं हुआ है।

योजना आयोग की उपसमिति के अनुसार, जो कृषि विपणन का अध्ययन कर रही थी ताकि इसे राष्ट्रीय विकास परिषद् में रिपोर्ट किया जा सके, 435 वर्ग किलोमीटर के बड़े क्षेत्र के लिए औसतन केवल एक कृषि मार्किट है। जबकि, पंजाब जैसे कृषि राज्य में एक नियमित मार्किट 114 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र को कवर करती है तो मेघालय जैसे राज्य में 11215 वर्ग किलोमीटर के विशाल क्षेत्र के लिए एक ही मार्किट है। कई दशक पहले वर्ष 1976 में राष्ट्रीय कृषि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार किसानों के लिए 5 किलोमीटर के क्षेत्रफल में एक मार्किट होनी चाहिए यथा 80 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में एक मार्किट। अधिकतम किसानों के लिए ग्रामीण आवधिक बाजारों जैसे ग्रामीण हॉट्स हैं, ये व्यापारिक कृषि के लिए उनका पहला संपर्क है।

नियमित मार्किट्स की पद्धति जिसका प्रमुख उद्देश्य किसानों के शोषण को रोकने के लिए कृषि विपणन आधारभूत सुविधाओं को विकसित करने और उचित व्यापारिक पद्धतियां आरंभ करने का जो उद्देश्य था वह प्राप्त नहीं हो पाया है। वास्तव में नियमित मार्किट्स और मंडी समितियां जो इनके संचालन के लिए बनाई गई थी वे किसानों के शोषण के लिए बूचड़खाना साबित हुई हैं। वे एकाधिकार बनाने में लगी हैं और उत्पादकों को बेहतर मूल्य दिलाने के लिए किसानों को नियमित मंडियों से बाहर अपनी उपजों के बिक्री के अधिकार से वंचित करती हैं। अब इन अनियमितताओं को हटाने के लिए राज्य कदम उठा रहे हैं जिनके द्वारा उनके विपणन कानून, कृषि उत्पाद विपणन समिति अधिनियमों में संशोधन किये जा रहे हैं।

कृषि उत्पादों की स्पाट मार्केट्स की स्थिति विकासशील, खंडित और अपारदर्शी होने के कारण इलैक्ट्रोनिक कोमोडिटी एक्सचेंजिज की आवश्यकता उत्पन्न हुई जो भावी व्यापारिक कारोबार की अनुमति देते हैं। ये मार्केट्स कमर्शियल प्लेटफार्म माने जाते हैं जहां पर विभिन्न व्यापारिक पार्टियां मिलती हैं और वे पारदर्शी पद्धति में व्यापार कर सकती हैं और भविष्य के लिए भी मूल्य बता सकती हैं ताकि वे अपने उत्पादन (फसलों की पद्धति) की योजना और व्यापारिक विकल्पों को तद्नुसार अपना सकें जिनमें विक्रेता, खरीददार और व्यापारी शामिल हैं। इस प्रकार के विपणन के मोड से स्पाट मार्केट्स का परिपूरक मिल जाता है किन्तु उसको रिपलेस नहीं कर पाता है।

जिंसों में एक्सचेंज आधारित भावी कारोबार के मुख्य कार्यों में मूल्य की खोज और जोखिम प्रबन्धन स्पष्ट, उचित और भलीभांति सूचना पद्धति के अनुसार शामिल है। इसके लिए कोमोडिटी एक्सचेंजिज से आशा की जाती है कि वे स्पाट पर मूल्य दर्शाएं और इसके साथ भावी तिथियों के लिए व्यापारियों हेतु बोली भी दर्शाएं ताकि विक्रेता (उत्पादक या किसान) और खरीददार अपने सौदे के समय और पद्धति संबंधी उचित निर्णय ले सकें। सैद्धांतिक रूप में भावी मूल्य स्पाट मूल्य और जिंसों की संचालन लागत द्वारा निर्धारित किए जाते हैं और अनुमानित मांग–आपूर्ति के अनुसार भी निर्धारित होते हैं। एक्सचेंजों द्वारा मूल्यों की अव्यवहारिक चालबाजी रोकी जानी चाहिए और इसके लिए खुले हितों (व्यक्तिगत पार्टियों द्वारा व्यापार अनुमत की जाने वाली समग्र मात्रा का व्यापार) और लाभ (सौदों के लिए आरंभिक जमा राशि जो दोषी पाए जाने पर जब्त करने के अध्यधीन है) की सीमा नियत करनी चाहिए।

लोकप्रिय धारणा के अनुसार भावी व्यापार या जिंसों में अमौलिक व्यापार भारत में नया नहीं है। यह पुरानी पुस्तकों में भी उल्लिखित है जैसे कोटल्या की अर्थ व्यवस्था पर प्राचीन पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में उल्लेख किया गया है। वर्ष 1875 में कपास में भावी कारोबार प्रारम्भ करने के लिए बम्बई काटन ट्रेड एसोसिएशन पहली कम्पनी थी। इसके पश्चात कुछ और वस्तुओं को भी भावी व्यापार में शामिल किया गया जिनमें पंजाब, गुजरात और उत्तर प्रदेश में तिलहनों का कारोबार शामिल है। हापुड़ जिंस एक्सचेंज वर्ष 1913 में स्थापित किया गया। कच्ची जूट और जूट की वस्तुओं में ऐसा कारोबार कलकत्ता में वर्ष 1919 में आरम्भ किया गया।

स्वतंत्रता के पश्चात भी सरकार ने भावी कारोबार के प्रति नकारात्मक विचार प्रकट नहीं किया। वास्तव में इसमें एक कानून बना दिया वह था फारवर्ड कान्ट्रैक्ट्स (रेग्यूलेशन) एक्ट 1952 जो इसे उचित रूप से नियमित करने के लिए था। किन्तु कुछ अबोध्य कारणों से सरकार ने जिंसों में औपशन ट्रेडिंग के विकल्प को नहीं रोका जो दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अंग्रेज शासकों ने आरम्भ किया था। इस प्रकार के कारोबार को वित्तीय सर्राफा पर अनुमति दी गई।

कानून बनने के बाद जिंस एक्सचेंजों के माध्यम से बड़ी संख्या में जिंसों का व्यापार आरम्भ हो गया था। किन्तु वर्ष 1969 में भयंकर सूखा पड़ने से कृषि जिंसों की अत्यधिक कमी के कारण सरकार ने जिंसों के भावी कारोबार पर एक ब्लेंकेट बैन कर दिया जो 4 दशक से अधिक समय तक रहा और यह तब तक रहा जब वर्ष 2002–03 में नए व्यापार के मोड को आरम्भ किया गया। इससे इक्सचेंज पर व्यापार की जाने वाली वस्तुओं की संख्या तेजी से बढ़ी। वर्ष 2006 तक भावी कारोबार गेहूँ, चावल, कपास, जूट, गुड़, दालों, खाद्य तेलों और मसालों जैसी जिंसों में भी हो गया, कृषि वस्तुओं के लिए भी कई धातुओं जिनमें कीमती धातुएं जैसे सोना और चांदी भी शामिल हैं। कोमोडिटीज एक्सचेंजों पर कारोबार की मात्रा बढ़ने लगी जबकि स्टाक एक्सचेंजों में व्यापार की जाने वाली जिंसों से भी कुछ ही समय में अधिक हो गई।

किन्तु वर्ष 2007 में मूल्यों में अचानक वृद्धि से सरकार को पुनः एक बड़ा निर्णय करना पड़ा कि कुछ संवेदनशील वस्तुओं का भावी कारोबार बंद किया जाए जैसे गेहूं, चावल, चीनी और कुछ मुख्य दालें। विश्व के वातावरण के आधार पर मूल्यों में अधिक वृद्धि हुई और घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में कई कृषि जिंसों की आपूर्ति बाधित रही जिसका दोष फयूचर ट्रेडिंग को दिया गया ताकि अधिकतम लोगों के उपभोग की चुनी हुई वस्तुओं को इस व्यापार से हटाया जा सके।

सरकार द्वारा बनाई गई समिति के प्रमुख योजना आयोग के सदस्य डॉ० अभिजित सेन थे, इसका उद्देश्य यह था कि मुद्रा स्फीति को बढ़ाने में फयूचर ट्रेडिंग का पता लगाया जाए, इसने अपनी रिपोर्ट में उल्लेख किया कि ऐसा कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है जो साबित करे कि फयूचर ट्रेडिंग से मूल्य बढ़े हैं। उपरोक्त विषय पर इस रिपोर्ट और अन्य अध्ययन से पता चलता है कि उन जिंसों या वस्तुओं के मूल्य अधिक बढ़े जिनका व्यापार कोमोडिटी एक्सचेंज पर नहीं किया जाता था जैसे प्याज और धातुएं जिनसे मुद्रा स्फीती अधिक बढ़ी न कि एक्सचेंज पर व्यापार की जाने वाली वस्तुओं के कारण। इसके पश्चात फयूचर ट्रेडिंग पर प्रतिबंध में कुछ जिंसों के लिए छूट दी गई जिसमें गेहूं शामिल है।

किंतु अभिजीत सेन समिति द्वारा दी गई अनुमति के पश्चात भी कड़वा सच यह है कि फयूचर ट्रेडिंग भी सट्टेबाजों के शोषण से अछूता नहीं है। इनके मुख्य कारणों में से एक कारण है कि जिंसों के कारोबार में वास्तविक भागीदार फयूचर ट्रेडिंग में कम भाग लेते हैं और फॉरवार्ड मार्किट्स कमीशन (एफ.एम.सी.), जिंस क्षेत्र का रेगुलेटर के लिए स्वायतता की कमी है तथा पर्याप्त नियमन शक्तियां नहीं हैं।

कोमोडिटी एक्सचेंजों पर व्यापार के लिए जो लोग आए थे वे सामान्य रूप में स्टॉक एक्सचेंज के नियमित खिलाड़ी थे। वास्तविक जिंस उत्पादक, व्यापारी और वास्तविक उपयोगकर्ता इस सुविधा का लाभ नहीं उठा पाए क्योंकि वे इस कारोबार के ढंग से परिचित नहीं थे। इस कारण अधिकतम सट्टेबाजी होने लगी क्योंकि सट्टेबाज हैजर्स से अधिक थे। इसके अतिरिक्त इसके ऑपरेटर्स धनी थे और अतः वे जोखिम लेने से नहीं डरते थे। यही स्थिति अभी तक विद्यमान है यद्यपि एफ. एम.सी. ने कुछ कदम उठाए हैं जिनमें मार्जिन मनी बढ़ाना और उपभोक्ता को जानने के लिए नए कदम उठाना, सट्टेबाजी को रोकना आदि है। किंतु एम.एम.सी. की अपनी सीमाएं हैं क्योंकि वह केवल खाद्य, जन वितरण और उपभोक्ता कार्य मंत्रालय के उपभोक्ता कार्य विभाग का अपेंडेज है।

वास्तव में इस प्रकार की स्थिति का अनुमान काबरा समिति ने व्यक्त किया था जिनकी रिपोर्ट वर्ष 1994 में सरकार को प्रस्तुत की गई, इस कारण वर्ष 1969 से प्रतिबंध लगने के बाद वर्ष 2002–03 में जिंसों के भावी कारोबार को पुनः आरंभ कर दिया गया। वास्तव में समिति के अध्यक्ष प्रो. के.एन. काबरा ने स्वयं रिपोर्ट के नोट में लिखा था कि फयूचर ट्रेडिंग को पुनः आरंभ करने से पहले एफ.एम.सी. का पर्याप्त विस्तार किया गा और शक्तियां दी जाएं। उन्होंने सावधान किया था कि यदि उन सभी स्थानों पर एफ.एम.सी. की शाखाएं खोले बिना फयूचर ट्रेडिंग को अनुमति दी गई जहां पर कोमोडिटीज एक्सचेंज हैं, वहां पर ये एक्सचेंज धनी लोगों के जुआघर (कैसीनों) बन जाएंगे। किंतु इस अच्छी सलाह पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सरकार को एफ.एम.सी. को अधिक स्वायतता और शक्तियां देने के लिए फॉरवार्ड मार्किट्स (रेगुलेशन) एक्ट के संशोधन के लिए संसद में एक बिल पारित कराना है।

इसके अतिरिक्त यह भी सत्य है कि फयूचर ट्रेडिंग मूल्य खोज के वांछित कार्य कारगर ढंग से तब ही कर सकता है जब बाजार की स्थितियां पूर्णतः मुक्त (फ्री) हों। ऐसी स्थिति में जहां पर सरकार मूल्यों का न्यूनतम समर्थन मूल्य नियत करके (जो वास्तव में बेंचमार्क मूल्य बन जाते हैं), आयात–निर्यात मानदंडों और करों में परिवर्तन करके, माल छुपाने पर प्रतिबंध लगाकर, विभिन्न जिंसों के आवागमन और व्यापार से प्रभावित करती है वहां पर फयूचर ट्रेडिंग अपनी योग्यता खो देती है कि वह भावी मूल्यों के रूझान की विश्वसनीय सूचनाएं उपलब्ध करा सके। आजकल यह बहुत सी जिंसों में हो रहा है, जिनमें चीनी, खाधान्न, दालें, तिलहन, कपास, जूट और अन्य वस्तुएं शामिल हैं।

इसके अतिरिक्त जिंसों में फयूचर ट्रेडिंग को पुनः आरम्भ करने का मुख्य उद्देश्य था कि किसानों को लाभ मिले और वे अपनी उपज का उच्च मूल्य प्राप्त करें, किन्तु यह ध्येय भी पूरी तरह से प्राप्त नहीं किया जा सका। इसके कई कारण हैं। एक कारण यह है कि अधिकतम किसानों को फसल कटाई के पश्चात तुरन्त पैसे की आवश्यकता होती है और वे अपनी बिक्री को भविष्य के लिए स्थगित नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त उत्पादकों द्वारा उगाई जाने वाली मात्रा भी उस मात्रा से कम पड़ जाती है जो कोमोडिटी एक्सचेंज सौदे के लिए निर्धारित की गई है जैसे वह मात्रा एक ट्रक या 100 क्विंटल माल या इससे भी अधिक मात्रा हो सकती है।

इसके अतिरिक्त, कोमोडिटी एक्सचेंज पर व्यापार करने वालों के लिए आवश्यक है कि उनके पास डीमेट एकाउंट, स्थाई खाता संख्या (पैन नं.) और कुछ मामलों में बिक्री कर संख्या भी आवश्यक होती है जो सामान्यतः किसानों के पास नहीं होती है। माल की सुपुर्दगी के लिए एक्सचेंज में आमतौर पर जिंसों को निर्धारित गुणवत्ता के मानकों के अनुरूप मांगते हैं। अन्यथा वे विक्रेता पर गुणवत्ता की कटाई लगा देते हैं जिस कारण फयूचर ट्रेडिंग में होने वाला संभावित लाभ किसानों को नहीं हो पाता है।

किन्तु यह समस्याएं अलंघ्य हैं। एक तरीका जो प्रोत्साहित करना चाहिए वह है कि किसान अपने समूह बनाएं, सहकारी संस्थाएं या कम्पनी बनाएं जो उन्हें एक समूह के रूप में अपनी–अपनी उपजें इक्ट्ठी करने में सहायता करें, उपजों को साफ कराएं और निर्धारित मानकों के अनुरूप ग्रेडिंग करें तथा कोमोडिटी फलोर पर व्यापार के लिए अन्य पूर्व आवश्यकताओं को पूरा करे। जहां तक कि सहकारी संस्थाएं और कमर्शियल बैंक जो किसानों को पैसा उधार देते हैं से भी समूह के रूप में कार्य कर सकते हैं। ऐसी व्यवस्था से दोनों को ही लाभ होगा किसानों का तो कोमोडिटी एक्सचेंज से सम्पर्क बनेगा, चाहे वह अप्रत्यक्ष हो, और बैंकों को किसानों से मिलने वाली राशि अधिक मिलेगी और बैंकों द्वारा किसानों को दिए गए ऋण की आदयगी सुनिश्चित होगी।

इसके अतिरिक्त फयूचर ट्रेडिंग से अधिक यह जिंसों में ओप्शन्स ट्रेडिंग है जो किसानों के लिए वास्तव में महत्वपूर्ण है क्योंकि यह उनके मूल्य जोखिम को कम करती है। यह इस कारण से है कि औप्शन्स ट्रेडिंग किसानों को अधिकार देती है, किन्तु बिना जिम्मेवारी के, कि वे भावी तिथि को प्रचलित मूल्यों पर अपनी जिंसों की बिक्री करें। साधारण शब्दों में यदि मूल्य किसानों के लिए उपयुक्त हैं तो वे अपनी उपज की बिक्री का अधिकार उपयोग कर सकते हैं यदि मूल्य उनके हितों के विरूद्ध जाते हैं तो वे इस करार से बाहर आ सकते हैं। किन्तु सरकार द्वारा काफी समय के पश्चात फचूचर ट्रेडिंग की अनुमति देने पर भी सरकार ने जिंसों में ओप्शन्स ट्रेडिंग को अभी तक अनुमति नहीं दी है। बहुत सी समितियों, कुछ संसदीय समितियों सहित, ने ओप्शन्स ट्रेडिंग से प्रतिबंध हटाने की सिफारिश की है। जितनी जल्दी यह कर दिया जाए उतना ही किसानों के लिए बेहतर होगा।

संपादकीय

हेनरी किसिंजर अपनी पुस्तक 'ऑन चाईना' में पूर्वी और पश्चिमी दर्शन की तुलना में बताते हैं कि, 'पश्चिम में सबसे अधिक समस्याओं को घुलनशील पाया गया है, जैसे ही कोई मुद्दा उठता है और उन्हें लगता है कि यह हल किया जा सकता है, वह उसे तुरन्त हल कर देते हैं। जबकि चीनियों का मानना है कि किसी भी समस्या का कोई अंतिम समाधान नहीं है, बल्कि हर समाधान एक दूसरी समस्या के लिए प्रवेश टिकट है।' यह मनोवैज्ञानिक अंतर है।

भारतीय अभिजात वर्ग तक सीमित नहीं है, बल्कि नौकरशाही, न्यायपालिका, राजनेताओं, पत्रकारों, तथाकथित बुद्धिजीवी और कुर्सी नागरिक समाज सहित सभी पश्चिमी दर्शन और विचारों के नशे में धुत्त हैं तथा अब पश्चिम के लोगों की तरह सोचते हैं। आम धारणा यह है कि किसान मुक्त आदानों को स्वीकार करने के परिणामस्वरूप रहने के घटिया स्तर को स्वीकार करेंगे। कुछ और सच्चाई से आगे जाया जा सकता है। लोग आत्म–सम्मान चाहते हैं और वह अपने स्वयं के प्रयासों के साथ खुद को सक्षम बनाकर पाया जा सकता है।

दुर्भाग्य से उभरते देशों के बाकी हिस्सों की तरह भारत में सत्तारूढ़ श्रेणी अभी भी इस वास्तविकता को समझने के लिए तैयार नहीं है। यू.पी.ए. सरकार दुलर्भ वित्तीय संसाधनों में निवेश कर कृषि उत्पादकता बढ़ाने के बजाऐ खाद्य बिल जैसे बेकार सार्वजनिक खर्च को अंतिम रूप देने में व्यस्त है, इस बिल के कारण भारतीय जनता सरकारी खैरात पर निर्भर रहेगी बजाऐ आत्म निर्भर होने के। निवेश एक राष्ट्र को मजबूत और आत्मनिर्भर बनाता है जबकि व्यय उसे संघर्ष करने और निर्भर रहने पर मजबूर करता है।

हम अपनी तुलना चीन के साथ करना पसंद करते हैं। मैं चीन की उनकी दीर्घकालिक योजना के दृष्टिकोण के लिए प्रशंसा करता हूँ। जब चीन में सुधारों की शुरूआत हुई तो सबसे पहले उन्होंने आत्मनिर्भरता हासिल करने के लिए कृषि सुधारों के साथ शुरूआत की और उसके बाद औधोगिक उत्पादकता में वृद्धि हासिल करी। जबकि भारत ने पश्चिम से प्रभावित होकर 1990 में वित्तीय सुधारों के साथ शुरूआत की। भारत जैसे उभरते देशों ने वित्तीय क्षेत्रों को आर्थिक विकास के एक इंजन के रूप में विकसित किया है।

कृषि उत्पादकता की उपेक्षा या उसको नजरअंदाज करने के फलस्वरूप कई उभरते देशों की तरह भारत में भी भोजन की कमी का सामना करना पड़ा है तथा कृषि जिंसों की किमतों में वृद्धि हुई है। इन कारणों ने दंगों और शासन परिवर्तन का नेतृत्व किया है। उच्च खाद्य कीमतों पर क्रोध के कारण ट्यूनीशियाई तानाशाह जिन एल एबेदिन बेन अली तथा मिस्र के तानाशाह होस्नी मुबारक को जाना पड़ा। यह आरोप है कि भारत में राजनीतिज्ञ, मतदाता मूल्य मुद्रास्फीति को लेकर चिंतित तथा गुस्से में हैं, लेकिन सरकार अभी भी अनिश्चितता में है कि क्या किया जाऐ।